महाकविमाघप्रणीतम्

शिशुपालवधम्

[प्रथमः सर्गः]

[विस्तृत भूमिका अन्वय, शब्दार्थ, हिन्दी अनुवाद, संस्कृत-व्याख्या, मल्लिनाथ सर्वङ्कषा टीका तथा टिप्पणी सहित]

व्याख्याकार:

डा० देवनारायण मिश्र

एम० ए० (हिन्दी, संस्कृत) व्याकरणाचार्य,

प्रवक्ता

आर० एम० पी० स्नातकोत्तर कालेज, सीतापुर

Alankar Book Depot
Educational & Competition Books
Opp. R.G. Degree College
Meerut (M) 09837088937

साहित्य भण्डार

शिक्षा साहित्य के मुद्रक एवं प्रकाशक

सुभाष बाजार, मेरठ-२५०००२

Scanned with CamScanner

स तप्तकार्तस्वरभास्वराम्बरः कठोरताराधिपलाञ्छनच्छविः।
विदिद्युते वाडवजातवेदसः शिखाभिराश्लिष्ट इवाम्भसां निधिः ॥२०॥

अन्वयः—तप्तकार्तस्वरभास्वराम्बरः कठोरताराधिपलाञ्छनच्छविः सः वाडवजातवेदसः शिखाभिः आश्लिष्टः अम्भसां निधिः इव विदिद्युते ॥२०॥

शब्दार्थ—स तप्तकार्तस्वरभास्वराम्बरः = तपाये गये सुवर्ण के समान भास्वर (चमकते हुए) वस्त्र वाले, कठोरताराधिपलाञ्छनच्छविः = पूर्ण चन्द्रमा के कलंक की छवि वाले, सः = कृष्ण, वाडवजातवेदसः = वडवाग्नि की, शिखाभिः = ज्वालाओं से, आश्लिष्टः = घिरे हुए, अम्भसाम् जल के, निधिः इव = निधि के समान, विदिद्युते = सुशोभित हुए।

हिन्दी अनुवाद—तपाये गये सुवर्ण के समान देदीप्यमान (पीले) वस्त्र वाले तथा पूर्ण चन्द्रमा के (मध्य स्थित) कलक के समान छवि वाले भगवान् कृष्ण वाडवाग्नि की ज्वालाओं से आवृत्त समुद्र के समान सुशोभित हुए।

भावार्थ—भगवान् कृष्ण पीताम्बर धारण करते थे। उनका वह पीताम्बर तपाये हुए सोने के समान चमक रहा था और वे सुवर्ण के आसन पर बैठे भी थे; अतः सुवर्ण के आसन पर बैठे हुए श्याम वर्ण वाले कृष्ण ऐसे प्रतीत हो रहे थे, जैसे पीले-पीले पूर्ण चन्द्रमण्डल पर स्थित कृष्ण वर्ण का कलंक दिखायी देता है। पीले-पीले चमकते हुए वस्त्रों से लिपटे हुए भगवान् कृष्ण वडवाग्नि की पीली-पीली ज्वालाओं से घिरे हुए समुद्र के समान सुशोभित हो रहे थे।

Scanned with CamScanner

अवतरणिका—नील वर्ण वाले नारद तथा श्यामवर्ण कृष्ण के शरीर से निकलने वाली कान्ति परस्पर मिश्रित होकर किस प्रकार सुशोभित हो रही थी, उसी का वर्णन कवि कर रहा है

रथाङ्गपाणेः पटलेन रोचिषामृषिस्विषः संवलिता विरेजिरे ।
चलत्पलाशान्तरगोचरास्तरोस्तुषारसूतेरिव नक्तसंश्रयाः ॥१२॥

अन्वयः—रथाङ्गपाणेः रोचिषां पटलेन संवलिताः ऋषिस्विषः नक्तं तरोः चलत्पलाशान्तरगोचराः तुषारसूतेः अंशवः इव विरेजिरे ॥१२॥

शब्दार्थ—रथाङ्गपाणेः—चक्रपाणि (कृष्ण) के, रोचिषां—कान्तियों, पटलेन समूह से, संवलिताः—मिश्रित, ऋषिस्विषः—ऋषि (के शरीर से निकलने वाली) किरणें, नक्तम्—रात्रि में, तरोः—वृक्ष के, चलत्पलाशान्तरगोचराः—चञ्चल पत्तों के बीच से होकर भूमि पर पड़ने वाली, तुषारसूतेः—चन्द्रमा की, अंशवः—किरणें, विरेजिरे—सुशोभित हुईं ।

हिन्दी अनुवाद—श्यामल कृष्ण की (श्यामल) किरणों के समूह से मिश्रित नारद की (शुभ्र) किरणें—रात्रि में वृक्ष के चञ्चल पत्तों के बीच से भूमि पर पड़ने वाली चन्द्र किरणों के समान सुशोभित हो रही थीं ।

भावार्थ—कृष्ण के सामने नारद बैठे हुए थे । कृष्ण के शरीर से निकलती हुई श्यामल किरणें एवं नारद के शरीर से निकलती धवल किरणें परस्पर मिलकर उसी प्रकार सुशोभित हो रही थीं, जिस प्रकार रात्रि में घने वृक्षों के हिलते-डुलते पत्तों के बीच से चन्द्रमा की किरणें पृथ्वी पर पड़ती हुई सुशोभित होती हैं । कृष्ण की श्यामलता कान्ति के बीच-बीच नारद की शुभ्र किरणें पड़ती थीं । जैसे पत्तों के बीच से छनकर थोड़ी-थोड़ी चाँदनी भूमि पर पड़ती है और जहाँ नहीं पड़ती है वहाँ वृक्ष की श्यामल छाया रहती है ।

संस्कृत-व्याख्या—रथाङ्गपाणेः—चक्रिणः, रोचिषां—तेजसाम्, पटलेन—समूहेन, संवलिताः—मिश्रिताः, ऋषिस्विषः—नारदकान्तयः, नक्तं—रात्रौ, तरोः—वृक्षस्य, चलत्पलाशान्तरगोचराः—चञ्चलपत्रान्तरायगाः, तुषारसूतेः—चन्द्रस्य, अंशवः—किरणाः, इव, विरेजिरे—चकाशिरे ।

सर्वङ्षा—रथाङ्गपाणेरिति । रथाङ्गं चक्रं पाणौयस्य तस्य हरेः । 'प्रहरणार्थेभ्यः परे निष्ठासप्तम्यौ भवतः' (वा०) इति पाणेः परनिपातः । रोचिषां छवीनां पटलेन समूहेन संवलिताः मिश्रिता ऋषिस्विषो नक्तं रात्रौ । सप्तम्यर्थेऽव्ययम् । तरोश्चलतां पलाशानां पत्राणामन्तरालेषु विवरेषु गोचरः आश्रयो येषां, ते तुषारा मूर्तिर्यस्य तत्तथेन्दोरंशव इव विरेजिरे चकाशिरे ॥

टिप्पणी—रथाङ्गपाणेः—कृष्ण के, 'रथस्य अङ्गं' पाणौ यस्य सः तस्य (बहुव्रीहि), हाथ में चक्र (रथ का अंग) धारण करने से कृष्ण को रथाङ्गपाणि कहा जाता है । रोचिषाम्—किरणों के, 'रोचिः शोचिरुभे क्लीबे' (अमरकोष) । पटलेन—समूह

से, 'पटलं तिलके नेत्ररोगे छदिषि संचये । पिके परिवारे च' (हेमकोष) । संवलिता मिली हुई, सम् + √वल् + इट् + क्त (टाप् प्र० ब० व०), ऋषित्विषः का विशेषण है । ऋषित्विषः = ऋषि की किरणें, 'ऋषेः त्विषः ऋषित्विषः (तत्पु०) । नक्तम् अव्यय पद है । चलत्पलाशान्तरगोचरा. = चलन्ति पलाशानि चलत्पलाशानि तेषाम् अन्तराणि एव गोचरः येषां ते (बहुव्रीहि), चलत् = चञ्च् — √'चल + शतृ' प्रत्यय = पत्ता, अन्तर = मध्यभाग, गोचर = आश्रय । घने वृक्षों के नीचे पृथ्वी पर वृक्ष के चञ्चल पत्तों के बीच से होकर चाँदनी पड़ती है । यह पद 'अणवः' का विशेषण है । तुषारभूतेः = चन्द्रमा की, "तुषारामूनिः यस्य स तस्य (बहुव्रीहि) । अंशवः = किरणें 'किरणोंसुमयूखांशुगमस्तिघृणिरश्मयः' (अमरकोष) । विरेजिरे = शोभित हुई, वि + √राजृ + लिट् (प्र० पु०, ए० व०) ।

विशेष—(१) अलंकार—कृष्ण और नारद की शारीरिक कान्तियों की पारस्परिक शोभा को चचल पत्तों क बीच से भूमि पर पड़ने वाली चाँदनी की शोभा के समान बताया गया है; अतः उपमा अलंकार है ।

(२) प्रस्तुत श्लोक में माघ ने अत्यन्त सुन्दर बिम्बविधान किया है, जो उनकी पैनी कल्पना का परिचायक है । साथ ही शब्द गुम्फन भी उत्कृष्ट कोटि का है ।

अवतरणिका—नारद और कृष्ण की शारीरिक कान्ति एक-दूसरे पर पड़ने से दोनों एक वर्ण हो रहे हैं—

प्रफुल्लतापिच्छनिभैरभीषुभिः शुभैश्च सप्तच्छदपांशुपाण्डुभिः ।
परस्परेणच्छुरिताऽमलच्छवी तदैकवर्णाविव तौ बभूवतुः ॥२२॥

अन्वयः—प्रफुल्लतापिच्छनिभैः सप्तच्छदपांशुपाण्डुभिः शुभैः अभीषुभिः परस्परेणच्छुरितामलच्छवी तौ तदा एकवर्णौ इव बभूवतुः ॥२२॥

शब्दार्थ—प्रफुल्लतापिच्छनिभैः = विकसित तमाल पुष्प के समान, सप्तच्छदपांशुपाण्डुभिः = सप्तच्छद पुष्प के समान पाण्डु, शुभैश्च = और मनोहर, अभीषुभिः = किरणों क द्वारा, परस्परेण = परस्पर, छुरितामलच्छवी = मिश्रित निमल कान्ति वाले तौ = कृष्ण और नारद, तदा = उस समय, एकवर्णौ = समान वर्ण, इव = समान, बभूवतुः = हो गये ।

हिन्दी अनुवाद—खिले हुए तमाल पुष्प के समान (श्याम) तथा सप्तच्छद (छितवन) के पराग के समान पाण्डु वर्ण वाली मनोहर किरणों के परस्पर मिल जाने से निर्मल कान्ति वाले कृष्ण और नारद एक व . के हो गये ।

भावार्थ—आमने-सामने बैठे हुए नारद और कृष्ण की शारीरिक छटा दूसरे पर पड़ रही है । कृष्ण की शारीरिक किरणें तमाल के समान कृष्णवर्ण की है और नारद की छटा छितवन के फूल के पराग के समान पाण्डु वर्ण की है । दोनों की मनोहर किरणें एक साथ मिल रही हैं, जिससे निर्मल छवि वाले वे दोनों एक ही वर्ण के प्रतीत हो रहे हैं ।

Scanned with CamScanner

अवतरणिका—देवर्षि नारद के आगमन से कृष्ण का अपार हर्ष हुआ, जो उनमें समा नहीं रहा था—

युगान्तकालप्रतिसंहृतात्मनो जगन्ति यस्यां सविकासमासत् ।
तनौ ममुस्तत्र न कैटभद्विषस्तपोधनाभ्यागमसम्भवा मुदः ॥२३॥

अन्वयः—युगान्तकालप्रतिसंहृतात्मनः कैटभद्विषः यस्यां तनौ जगन्ति सविकासम् आसत् तत्र तपोधनाभ्यागमसम्भवाः मुदः न ममुः ॥२३॥

शब्दार्थ—युगान्तकालप्रतिसंहृतात्मनः=प्रलयकाल में सम्पूर्ण आत्माओं को अपने अन्दर समाहित कर लेने वाले, कैटभद्विषः=कैटभ के शत्रु कृष्ण के, यस्यां=जिस, तनौ=शरीर में, जगन्ति=संसार, सविकासं=सावकाश (सरलता के साथ), आसत=स्थित होता था, तत्र=उसी (शरीर) में, तपोधनाभ्यागमसंभवा=तपोधन (नारद) के आगमन से उत्पन्न, मुदः=हर्ष, न ममुः=नहीं समाया ।

हिन्दी अनुवाद—प्रलयकाल में अपने ही अन्दर सम्पूर्ण जीवात्माओं को समाहित कर लेने वाले भगवान् कृष्ण के जिस शरीर में (सारा) संसार अवकाशपूर्वक स्थित हो जाता था, उसी शरीर में तपस्वी नारद के आगमन से उत्पन्न हर्ष नहीं समा रहा था ।

भावार्थ—सृष्टि के संहारकाल में भगवान् कृष्ण समस्त जीवात्माओं को अपने में समाहित कर लेते हैं। जिस प्रकार मकड़ी अपने द्वारा उगले गये जाल को अपने में समाहित कर लेती है। 'एकोऽहं बहुस्याम' के अनुसार सम्पूर्ण जीवात्मा कृष्ण (हिरण्यगर्भ) के व्यष्टि रूप ही तो हैं; अतः उनके शरीर में सारा संसार बड़ी सरलता से स्थित हो जाता था। किन्तु नारद के आगमन से कृष्ण को इतनी प्रसन्नता हुई, जो उनके शरीर में नहीं समा रही थी ।

संस्कृत-व्याख्या—युगान्तकालप्रतिसंहृतात्मनः=युगान्तकाले प्रलयकाल, प्रतिसंहृताः उपहृता आत्मनः जीवाः येन सः तस्य, कैटभद्विषः=कैटभशत्रोः, यस्यां=प्रसिद्धायां, तनौ=शरीरे, जगन्ति=भुवनानि, सविकासम्=सावकासम्, आसत=अतिष्ठन्, तत्र=तस्यां तनौ, तपोधनाभ्यागमसभवाः=नारदागमनसंजाताः मुदः=हर्षाः, न ममुः=नमान्ति स्म ।

सर्वङ्कषा—युगान्तेति । युगान्तकाले प्रतिसहृतात्मनः आत्मन्युपसंहृता आत्मनो जीवा येन तस्य कैटभद्विषः हरेर्यस्यां तनौ जगन्ति सावकासं सविस्तरमासतातिष्ठन् । 'आस उपवेशने' लङ् । तत्र तनौ देहे तपोधनाभ्यागमेन संभवन्तीति संभवाः संभूताः । प्रचाद्यच् । मुदः संतोषा न ममुः । अतिरिच्यन्ते स्मेत्यर्थः । चतुर्दशभुवनभरणपर्याप्ते

Scanned with CamScanner

वृत्तिरन्तर्मानीति कविप्रौढोक्तिसिद्धाप्रतिषयेन स्वतः, सिद्धस्याभेदेनाध्यवसितातिशयोक्तिः, सा च मुदामन्तः सम्बन्धेऽप्यसम्बन्धोक्त्या संबन्धासंबन्धरूपा ।

टिप्पणी—युगान्तकालप्रतिसंहृतात्मनः = युगानां अन्तः युगान्तः, सः चासौ कालः युगान्तकालः तस्मिन् प्रतिसंहृताः आत्मानः येन सः तस्य (बहुव्रीहि), युग० युग चार माने गये हैं—सतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग, कलियुग । ये समय मापक शब्द हैं । इनी युगों में निश्चित वर्ष माने गये हैं । एक सहस्र युग के अन्त में प्रलय हो जाता है । यही 'युगान्तकाल' है । उस युगान्तकाल में सम्पूर्ण जीवात्माएं अपने कारण रूप में लीन हो जाती हैं । नारायण ही सम्पूर्ण जीवात्माओं के कारण रूप हैं । उन्हीं का अवतार कृष्ण का है । अतएव युगान्तकाल सम्पूर्ण जीवात्माओं को समाहित करने वाला माना गया है । कैटभद्विषः = कैटभ के शत्रु के, कैटभ द्वेष्टीति कैटभद्विट् तस्य—कैटभ + द्विष् + क्विप् (षष्ठी, ए० व०) । जगन्ति = सम्पूर्ण लोक, 'विष्टपं भुवनं जगत्' (अमरकोष) । सविकासम् = विस्तारपूर्वक विकासेन सहितम् सविकासम्, 'वि + √कस् + घञ्' । आसत = स्थित होना था '√आस् + लङ् (प्र० पु० ब० व०) । तपोधनाभ्यागमसंभवाः = तपः एव धनं यस्य स तपोधनः तस्य अभ्यागमः तेन संभवः यासाम् ताः (बहु व्रीहि) तपोधन (नारद) के अभ्यागम से उत्पन्न तपोधनः = नारद, अभ्यागम = अभि + आ + √गम् + अप् (आगमन), सम्भव = उत्पत्ति, सम + √भू + अच् । यह पद 'मुदः' का विशेषण है । मुदः = हर्ष, मुत्प्रीतिः प्रमदो हर्ष प्रमोदामोद सम्मदाः' (अमरकोष) । मम्नुः = समाया, '√मा + लिट (प्र० पु०, ब० व०) ।

विशेष—(१) अलङ्कार - जिस कृष्ण के शरीर में चौदह भुवन समा सकता था, उसमें नारद के आगमन से उत्पन्न हर्ष नहीं समा सका । यहाँ कविप्रौढोक्ति सिद्ध से स्वतः सिद्ध के अभेदाध्यवसाय से अतिशयोक्ति अलङ्कार है । प्रीति के अन्तःसम्बन्ध होने पर असम्बन्धोक्ति के कारण सम्बन्धासम्बन्ध अतिशयोक्ति है ।

(१) प्रस्तुत श्लोक को जगदाधार के रूप में निर्दिष्ट किया गया है । इससे उनका पूर्ण ब्रह्मत्व सिद्ध होता है ।

(२) कैटभद्विषः = एक कथानक के अनुसार प्रलयकाल में सम्पूर्ण जगत् जल-मग्न था । भगवान् विष्णु शेषशय्या पर योगनिद्रा में विराजमान थे । तभी उनके कान के मैल से मधु और कैटभ दो दैत्य उत्पन्न हुए । ये दोनों नाभि कमल पर स्थित ब्रह्मा का वध करना चाहते थे । ब्रह्मा ने योगमाया की स्तुति की, तब विष्णु जागे और पाँच हजार वर्षों तक युद्ध के बाद उनकी इच्छा के अनुसार दैत्यों के सिर को अपनी जंघा पर रखकर चक्र से काट डाला; अतः कैटभद्विट् कहा जाता है ।

अवतरणिका—प्रस्तुत श्लोक में कृष्ण के 'पुण्डरीकाक्ष' नाम की सार्थकता का वर्णन किया गया है—

निदाघधामानमिवाधिदीधितिं मुदा विकासं मुनिमभ्युपेयुषी ।
विलोचने बिभ्रदधिश्रितश्रिणी सपुण्डरीकाक्ष इति स्फुटोऽभवत् ॥२४॥

अन्वयः— निदाघधामानम् इव अधिदीधितिं मुनिम् अभि मुदा विकासम् उपेयुषी अधिश्रितश्रिणी विलोचने बिभ्रत् सः पुण्डरीकाक्ष इति स्फुटः अभवत् ॥२४॥

शब्दार्थ—निदाघधामानम् इव = सूर्य के समान्, अधिदीधितिं = अति तेजस्वी, मुनिं = नारद को, अभि = लक्ष्य करके, मुदा = प्रसन्नता के कारण, विकासम् = प्रफुल्लता को, उपेयुषी = प्राप्त होने वाली, अधिश्रितश्रिणी = अधिक शोभायुक्त विलोचने = नेत्रों को, विभ्रत् = धारण करते हुए, सः = कृष्ण, पुण्डरीकाक्षः इति = पुण्डरीकाक्ष ऐसा अर्थात् कमलनयन ऐसा, स्फुटः = स्पष्ट अभवत् = हो गया।

हिन्दी अनुवाद—सूर्य के सदृश अत्यधिक तेजस्वी नारद को अभिलक्षित करके हर्ष के कारण विकास (प्रफुल्लता) को प्राप्त हुए अत्यधिक शोभासम्पन्न नेत्रों को धारण करते हुए भगवान् कृष्ण 'पुण्डरीकाक्ष' हैं, यह स्पष्ट हो रहा था।

भावार्थ—कृष्ण के सामने बैठे हुए नारद अधिक तेजः-सम्पन्न होने के कारण सूर्य के समान प्रतीत हो रहे थे। सूय के उदित होने पर कमल (पुण्डरीक) खिल उठते हैं। नारद के आगमन से भगवान् कृष्ण को इतनी प्रसन्नता हुई है कि उनके नेत्र प्रफुल्लित होकर अधिक शोभा सम्पन्न हो रहे थे अर्थात् श्वेत कमल के समान प्रतीत हो रहे थे; अतः भगवान् कृष्ण का 'पुण्डरीकाक्ष' नाम सार्थक हो रहा था।

संस्कृत-व्याख्या—निदाघधामानम् = सूर्यम्, इव, अधिदीधितिं = अधिकतेजसम्, मुनिं = नारदम्, अभि = अभिलक्ष्य, मुदा = प्रीत्या, विकासम् = प्रसारम्, उपेयुषी = प्राप्तवती, अधिश्रितश्रिणी = अधिकशोभासम्पन्ने, विलोचने = नेत्रे, विभ्रत् = दधानः, सः = कृष्णः, पुण्डरीकाक्षः = कमलनयनः, इति, स्फुटः = स्पष्टम्, अभवत् = बभूव।

सर्वङ्कषा—निदाघेति ॥ निदाघमुष्णं धाम किरणो यस्य तं तथोक्तम्। 'निदाघो ग्रीष्मकाले स्यादुष्णस्वेदाम्बुनोरपि' इति विश्वः। अर्कमिवाधिदीधितिमधिकतेजस मुनमभिलक्ष्य। 'अभिभागे' इति लक्षणे कर्मप्रवचनीयसंज्ञा। 'कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया' ; (२/३/८) मुदा विकासमुपेयुषी उपगते। क्वसुप्रत्ययान्तो निपात. अतएवाधिश्रिता प्राप्ता श्रीर्याभ्यां ते तथोक्ते। 'इकोऽचि विभक्तौ' (७/१/७३) इति नुमागमः। विलोचने बिभ्रत्। 'नाभ्यस्ताच्छतुः, (७/१/७८) इति नुमभावः। सः हरिः पुण्डरीकाक्ष इत्येव स्फुटोऽभवत्। सूर्यसंनिधाने श्रीविकासभावादक्ष्णां पुण्डरीकसाधर्म्यात्। पुण्डरीके इवाक्षिणी यस्येत्यवयवार्थलाभे पुण्डरीकाक्ष इति व्यक्तम्। अन्वर्थसंज्ञोऽभूदित्यथः। विभ्रत्स्फुटोऽभवदिति पदार्थहेतुकस्य काव्यलिङ्गस्य निदाघधामानमिवेत्युपमासापेक्षत्वादनयोरङ्गाङ्गिभावेन संकरः।

टिप्पणी—**निदाघधामानम्** = निदाघ धाम यस्य सः तम् (बहुव्रीहि), निदाघ = उष्ण, नितरां दह्यते अनेनेति निदाघम्—'नि + √दह + घञ्' 'निदाघोग्रीष्मकाले स्यादुष्णस्वेदाम्बुनोरपि' (विश्वकोष), धाम = तेज। यह सूय का नाम है। अधिदीधितिम् = अधिकाः दीधितयो यस्य सः तम् (बहुव्रीहि), अर्थात् अधिक किरणों वाले। यह मुनि का विशेषण है। **मुनिं** = मुनि को (नारद को) यहाँ 'कर्मप्रवचनीय युक्ते द्वितीया' से द्वितीयाविभक्ति हुई है; क्योंकि 'अभि' की 'अभिरभागे' से कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है।

Scanned with CamScanner

अभि = लक्ष्य करके। उपेयुषी = प्राप्त हुए, 'उप + √इण् + लिट्—क्वसु (नपुं०, द्वि०, व०), विलोचने का विशेषण है। अधिश्रितश्रिणी = अधिक शोभा को प्राप्त, अधिश्रिता श्रीः याभ्यां ते (बहुव्रीहि), 'अधि + श्रि + क्त = अधिश्रित = प्राप्त अधिश्रित श्री (द्वि०, द्वि० व० का रूप), यहाँ 'इकोचिविभक्तौ' से नुम् हो जाता है। यह पद 'विलोचने' का विशेषण है। बिभ्रत् = धारण करते हुए, वि + √भृञ् = बिभ्रत्, 'नाभ्यस्ताच्छतुः' से नुम् का निषेध हो जाता है। पुण्डरीकाक्षः = पुण्डरीक (श्वेत कमल) के समान नेत्र वाले, पुण्डरीक इव अक्षिणी यस्य सः (बहुव्रीहि)। स्फुटः = स्पष्ट, कृष्ण के विकसित नेत्र अपनी कमलरूपता को स्पष्ट कर रहे थे, जिससे कृष्ण का 'पुण्डरीकाक्ष' नाम अन्वर्थक हो रहा था। अभवत् √भू + लङ् (प्र० पु० ए० व०)।

विशेष—(१) अलङ्कार—'पुण्डरीकाक्षः' में लुप्तोपमा तथा 'निदाघधामानमिव' में उपमा अलङ्कार है। 'पुण्डरीकाक्ष' की सार्थकता के प्रति विकसित नेत्रों को कारण बताया गया है; अतः पदार्थहेतुक काव्यलिङ्ग अलङ्कार है, जो उपमा की अपेक्षा रखता है; अतः दोनों अङ्गाङ्गिभाव संकर है।

अवतरणिका—प्रफुल्लित हुए भगवान् कृष्ण नारद जी से बोले—

सितं सितिम्ना सुतरां मुनेर्वपुर्विसारिभिः सौधमिवाऽथ लम्भयन्।
द्विजावलिव्याजनिशाकरांशुभिः शुचिस्मितां वाचमवोचदच्युतः ॥२५॥

अन्वय—अथ अच्युतः विसारिभिः द्विजावलिव्याजनिशाकरांशुभिः सितं मुनेः वपुः सौधम् इव सुतरां सितिम्ना लम्भयन् शुचिस्मितां वाचम् अवोचत् ॥२५॥

शब्दार्थ—अथ = इसके बाद, अच्युतः = कृष्ण, विसारिभिः = (चारों ओर) फैलने वाली, द्विजावलिव्याजनिशाकरांशुभिः = दन्त पंक्तियों के बहाने चन्द्रमा की किरणों के से, सितम् = शुभ्र, मुनेः = नारद के, वपुः = शरीर को, सौधमिव = राजप्रसाद के समान, सुतरां = अत्यधिक, सितिम्ना = शुभ्रत्व को, लम्भयन् = प्राप्त कराते हुए, शुचिस्मिताम् = ईषद्, हास्ययुक्त, वाचम् = वचन, अवोचत् = बोले।

हिन्दी अनुवाद—इसके बाद भगवान् कृष्ण चारों ओर फैलने वाली दन्तपंक्ति के बहाने चन्द्रमा की किरणों से (स्वभाव से ही) शुभ्र नारद के शरीर को राजमहल के समान और अधिक शुभ्रत्व प्रदान करते हुए पवित्र एवं मन्द मुस्कान से युक्त वचन (नारद जी से) बोले।

भावार्थ—बोलने के लिए उद्यत भगवान् कृष्ण के विकसित मुख से चन्द्रमा के समान दाँतों की किरणें सामने बैठे हुए नारद पर पड़ने लगीं। उन किरणों से स्वतः गौर वर्ण वाले नारद के शरीर को चूने से पुते हुए शुभ्रतर राजमहल के समान और भी अधिक धवलिमा (गौरता) प्रदान करते हुए मन्द मुस्कान युक्त भगवान् कृष्ण नारद जी से बोले।

संस्कृत-व्याख्या—अथ = अनन्तरम्, अच्युतः = कृष्णः, विसारिभिः = प्रसरद्भिः,

प्रतिपादित करते हुए कह रहे हैं—

हरत्यघं सम्प्रति हेतुरेष्यतः शुभस्य पूर्वाचरितैः कृतं शुभैः।
शरीरभाजां भवदीयदर्शनं व्यनक्ति कालत्रितयेऽपि योग्यताम् ॥२६॥

अन्वयः—भवदीयदर्शनं शरीरभाजां कालत्रितये अपि योग्यतां व्यनक्ति। सम्प्रति अघं हरति। एष्यतः शुभस्य हेतुः। पूर्वाचरितैः शुभैः कृतम् ॥२६॥

शब्दार्थ—भवदीयदर्शनम्=आप का दर्शन। शरीरभाजाम्=शरीरधारियों का कालित्रतयेऽपि=तीनों कालों में, अपि=भी, योग्यतां=पवित्रता को, व्यनक्ति=प्रकट करता है। सम्प्रति=इस समय, अघम्=पाप, हरति=हरता है, एष्यतः=आने वाले, शुभस्य=कल्याण का, हेतु=कारण, पूर्वाचरितैः=पहले किये गये, शुभैः=पुण्यों से, कृतम्=प्राप्त (होता है)।

हिन्दी अनुवाद—आपका दर्शन तीनों कालों (भूत, भविष्यत्, वर्तमान) में भी शरीरधारियों की पवित्रता को व्यक्त करता है, इस समय (आप का दर्शन) पाप को हरण करता है, भावी कल्याण का हेतु (कारण) है तथा पहले किये गये पुण्यों से प्राप्त हुआ है।

भावार्थ—भगवान् [illegible] नारद से कह रहे हैं कि हे महर्षे! आप का दर्शन भूत, भविष्य तथा वर्तमान तीनों कालों में शरीरधारियों की पवित्रता को व्यक्त करता है। वर्तमान काल में पाप का विनाशक है, भविष्यत्काल के कल्याण का हेतु है तथा भूतकाल में किये गये पुण्यों से ही आपका दर्शन प्राप्त हुआ है अथवा प्राप्त होता है अर्थात् पूर्वजन्म के पुण्यकर्म के परिणामस्वरूप ही आपका दर्शन प्राप्त होता है अन्यथा नहीं।

संस्कृत-व्याख्या—भवदीयदर्शनम्—युष्मद्दर्शनम्, शरीरभाजां=देहिनाम्, कालत्रितयेऽपि=भूतभविष्यदादिकालत्रयेऽपि, योग्यतां=पवित्रताम्, व्यनक्ति=प्रकटयति, सम्प्रति=इदानीम्, अघम्=पापम्, हरति=नाशयति, एष्यतः=भविष्यतः, शुभस्य=कल्याणस्य, हेतुः=कारणम्, पूर्वाचरितैः=पूर्वकृतैः, शुभैः=पुण्यैः, कृतम्=प्राप्तम् (भवति)।

सर्वङ्कषा—हरतीति।। भवदीयदर्शनं शरीरभाजाम्। द्रष्टृणामित्यर्थः। भजो ण्विः' (२/२/६२) कालत्रितये भूतादिकालत्रितयेऽपि योग्यतां पवित्रतां व्यनक्ति समर्थति। कुतः—संप्रति दर्शनकाले अघं पापं हरति। एष्यतो भाविनः। शुभस्य

Scanned with CamScanner

जगत्यपर्याप्तसहस्रभानुना न यन्नियन्तुं समभावि भानुना ।
प्रसह्य तेजोभिरसङ्ख्यतां गतैरदस्त्वया नुन्नमनुत्तमं तमः ॥२७॥

अन्वय—जगति अपर्याप्तसहस्रभानुना यत् तमः नियन्तुं न समभावि अदः अनुत्तमं तमः असंख्यतां गतैः तेजोभिः प्रसह्य त्वया नुन्नम् ॥२७॥

शब्दार्थ—जगति = संसार में, अपर्याप्तसहस्रभानुना = अपरिमित हजारों किरणों वाले, भानुना = सूर्य के द्वारा, यत् = जो, तमः = अन्धकार, नियन्तुं दूर करने में, न समभावि = समर्थ न हो सके, अनुत्तमम् = सर्वोत्तम्, अदः = इस (अन्धकार) को, त्वया = तुम्हारे द्वारा, असंख्यतां = अपरिमितता, को गतैः = प्राप्त हुए, तेजोभिः = तेज के द्वारा, प्रसह्य = बलपूर्वक, नुन्नम् = नष्ट कर दिया गया ।

हिन्दी अनुवाद—संसार में अपरिमित सहस्रों किरणों वाला सूर्य जिस अन्धकार

को दूर करने में समर्थ नहीं हो सका। उसी सर्वोत्कृष्ट (अज्ञान रूप) अन्धकार को आपने अगणित (ज्ञानरूप) तेजों के द्वारा बलपूर्वक नष्ट कर दिया।

भावार्थ—भगवान् कृष्ण नारद से कहते हैं—महर्षे ! संसार में हजारों किरणों वाला सूर्य जिस अज्ञान रूप अन्धकार को दूर नहीं कर सका, आपने उस सर्वश्रेष्ठ अज्ञानान्धकार को अपने ज्ञानरूप तेज से बलपूर्वक नष्ट कर दिया।

संस्कृत-व्याख्या—जगति = संसारे, अपर्याप्तसहस्रभानुना = अपर्याप्ता अपरिच्छिन्नाः सहस्रं भानवोंऽशवः यस्य तेन, भानुना = सूर्येण, यत्, तमः = अन्धकारम्, नियन्तुं = दूरीकर्त्तुं, न समभावि = न शेके, अनुत्तम = सर्वोत्कृष्टम्, अदः = इदम् तमः, त्वया = नारदेन, असंख्यतां = अगणितां, गतैः = प्राप्तैः, तेजोभिः = ज्ञान रूप प्रकाशैः, प्रसह्य = हठात्, नुन्नम् = छिन्नम्।

सबंङ्कुषा—जगतीति ॥ जगति अपर्याप्ताः परिच्छिनाः सहस्रं भानवोंऽशवो यस्य तेन भानुनाऽर्केण। 'भानवोऽर्ककरांशवः' इति वैजयन्ती। यत्तमो नियन्तुं निवारयितुं न समभावि न शेके। भावे लुङ्। अविद्यमानमुत्तमं सर्वाधिकम् अदस्तमो मोहात्मकं असंख्यतां। गतैस्तेजोभिः प्रसह्य बलात्त्वया नुन्नं छिन्नम्। अतः श्लाघ्यदर्शनो भवानिति भावः। 'नुदविद—' इत्यादिना विकल्पान्निष्ठानत्वभावः। अत्रोपमानाद्ज्ञानोर्मुनेराधिक्यप्रतिपादनाद्व्यतिरेकालङ्कारः।

टिप्पणी—**अपर्याप्तसहस्रभानुना** = अपर्याप्ताः सहस्रं भानवः यस्य सः तेन (बहुव्रीहि), अपर्याप्त = असीमित, नञ् + परि + आप् + क्त, सहस्र = हजार, भानु = किरण, 'भानवोऽर्क हरांशवः' (वैजयन्तीकोष), यह 'भानुना' (सूर्य) का विशेषण है। नियन्तुं = नियन्त्रित करने के लिये, नि + √यम् + तुमुन्। **समभावि** = समर्थ हुए, सम् + भू + लुङ् (भाव में), प्र० पु०, ए० व०। **अनुत्तमम्** = सर्वश्रेष्ठ, न उत्तमं यस्मात्तत् अनुत्तमम्, 'नञ + उत् + तमप्' (द्वि०, ए० व०)। 'अदः' का विशेषण है। असंख्यताम् = अपरिमितता, को, न विद्यते सख्या यस्य तत् असंख्यम्, तस्य भावः असंख्यता ताम्—असंख्य + तल् (टाप्, द्वि, ए० व०)। **गतैः** = प्राप्त हुए, '√गम् + क्त (तृ०, ब० व०)', 'तेजोभिः' का विशेषण है। **प्रसह्य** = बलपूर्वक, प्र + √सह् + क्त्वा (ल्यप्), 'प्रसह्य तु हठार्थकम्' (अमरकोष)। **नुन्नम्** = नष्ट कर दिया, '√नुद् + क्त' (त् को न् 'नुद विद—०' इत्यादि सूत्र से)।

विशेष—(१) अलङ्कार—प्रस्तुत श्लोक में उपमान सूर्य की अपेक्षा उपमेय नारद को अधिक बताया गया है; अतः व्यतिरेक अलङ्कार है।

(२) माघ व्याकरण के पण्डित थे। उन्हें भावकर्म का प्रयोग अधिक अभीष्ट था।

अवतरणिका—भगवान् कृष्ण नारद को वेदों की अक्षय निधि के रूप में मानते हैं—

ऋतः प्रजाक्षेमकृता प्रजासृजा सुपात्रनिक्षेपनिराकुलात्मना।
सदोपयोगेऽपि गुरुस्त्वमक्षयो निधिः श्रुतीनां धनसम्पदामिव ॥२८॥

अन्वयः—प्रजाक्षेमकृता सुपात्रनिक्षेप—निराकुलात्मा प्रजासृजा त्वं धन-सम्पदाम् इव श्रुतीनां सदा उपयोगेऽपि गुरुः अक्षयः निधिः कृतः ॥२८॥

शब्दार्थ—प्रजाक्षेमकृता = प्रजा अथवा सन्तान का कल्याण करने वाले, सुपात्रनिक्षेपनिराकुलात्मना = योग्य पात्र में स्थापित करने के कारण सुस्थिर चित्त वाले, पक्ष में–सुदृढ़ पात्रों में स्थापित करने के कारण निश्चिन्त मन वाले, प्रजासृजा ब्रह्मा के द्वारा, पिता के द्वारा, त्वम् = आप, धनसम्पदाम् = धन सम्पत्तियों के, इव = समान, श्रुतीनां = वेदों के, सदा = सर्वदा, उपयोगे = प्रयोग करने पर, उपभोग करने पर, अपि = भी, अक्षय = कभी क्षीण न होने वाले, गुरुः = गुरु (उपदेशक), महान्, निधिः = कोष, कृतः = बनाये गये हो।

हिन्दी अनुवाद—अपनी सन्तान का कल्याण चाहने वाला पिता जिस प्रकार सुदृढ़ पात्र में धन सम्पत्ति को रखकर निश्चिन्त हो जाता है और (सद्रूप में) व्यय करने पर भी वह क्षीण नहीं होती है। उसी प्रकार प्रजा का कल्याण करने वाले ब्रह्मा ने धन सम्पत्ति के समान ही वेदों के ज्ञान को आप जैसे सुयोग्य पात्र में सुरक्षित करके स्वयं निश्चिन्त हो गये और वेदों के (उपदेशादि रूप में) उपयोग करने पर आप उसके अक्षय निधि हैं।

भावार्थ—जिस प्रकार अपनी सन्तानों का कल्याण चाहने वाला पिता अपनी धनसम्पत्ति को लोहे आदि के बने सुदृढ़ पात्रों में सुरक्षित रखता है। ऐसा करके वह अपने पुत्रों की ओर से निश्चिन्त हो जाता है, क्यों कि ऐसी सुरक्षित निधि उचित ढंग से व्यय करने पर भी कभी नष्ट नहीं होती है। उसी प्रकार समस्त मानव जाति का कल्याण चाहने वाले ब्रह्मा आप जैसे सुयोग्य पात्र में वेद रूप निधि को सुरक्षित रखकर स्वयं निश्चिन्त हो गये हैं। उन वेदों का उपदेश आदि के माध्यम से चाहे कितना उपयोग किया जाये परन्तु वह कभी समाप्त नहीं होगा; अतः आप उसके अक्षय निधि हैं।

संस्कृत-व्याख्या—प्रजाक्षेमकृता = प्रजानां जनानामपत्यानां च क्षेमकृता कल्याणकारिण, सुपात्रनिक्षेपनिराकुलात्मना = सुपात्रे योग्यजने सुदृढभाजने च निक्षेपेण अधानेन च निराकुलात्मना स्वस्थचित्तेन, प्रजासृजा = ब्रह्मणा पित्रा च, त्वम् = भवान्, धनसम्पदाम् = धनसम्पत्तीनाम्, इव श्रुतीनाम् = वेदानाम्, सदा = सर्वदा, उपयोगे = दानभोगाभ्यां व्ययेऽपि, गुरुः = महान्, अक्षयः = विनाशरहितः, निधिः = निक्षेपः, कृतः, = विहितः (असि)।

सर्वङ्कषा—कृत इति ॥ प्रजानां जनानामपत्यानां च क्षेमकृता कुशलकारिणा। 'प्रजा स्यत्सततौ जनैं' इत्यमरः सुपात्रे योग्यपुरुषे कटाहादिदृढभाजने च निक्षेपेण निधानेन च निराकुलात्मना स्वस्थचित्तेन। 'योग्यभाजनयोः पात्रम्' इत्यमरः। प्रजासृजा ब्रह्मणा पुत्रिणा च। त्वं धनसम्पदामिव श्रुतीनां वेदानां सदोपयोगे दानभोगाभ्यां व्ययेऽप्यक्षयः। एकत्राम्नानादन्यत्रानन्त्याच्चेति भावः। गुरुरुपदेष्टाः। संप्रदाय-

श्लोक इति यावत् । अन्यत्र महान् । निधीयत इति निधिः निक्षेपः कृतः । उपपदे धोः किः' (३/३/९२) श्रुतिसदायद्वारा धर्माऽधर्मव्यवस्थापकतया जगत्प्रतिष्ठा-हेतुनां भवादृशां कस्य न श्लाघ्यमिति भावः । अत्र शब्दमात्रसाधर्म्यान्छ्लेषोऽयं प्रकृतविषय इत्याहुः ।

टिप्पणी—**प्रजाक्षेमकृता** = प्रजानां क्षेम करोतीति प्रजाक्षेमकृत् तेन (तत्पु०), प्रजा=प्रकर्षेण जायन्ते इति प्रजाः—प्र-+ √जनि + ड (टाप्), जन अथवा सन्तति, 'प्रजा स्यात् सन्ततौ जने च' (अमरकोष), क्षेमकृता = कल्याण करने वाले, क्षेम + √कृ + क्विप् (तृ० ए० व०), यह 'प्रजासृजा' का विशेषण है । **सुपात्रनिक्षेपनिराकुलात्मना**=सुपात्रे निक्षेपः सुपात्रनिक्षेपः तेन निराकुल आत्मा यस्य सः तेन (बहुव्रीहि); (१) योग्य पुरुष में स्थापित करने के कारण स्वस्थचित्त वाले (दूसरे पक्ष में); (२) लोहादि धातुओं से निर्मित पात्र में रखने के कारण निश्चिन्त मन वाले; पात्र = योग्य अथवा भाजन: 'योग्यभाजनयो पात्रम्' (अमरकोष), यह 'प्रजासृजा' का विशेषण है। प्रजासृजा = प्रजा की उत्पत्ति करने वाले ब्रह्मा के द्वारा तथा सन्तति की उत्पत्ति करने वाले पिता के द्वारा, प्रजाः सृजतीति प्रजासृट् तेन, प्रजा + सृज + क्विप् (तृ० ए० व०)। **धनसम्पदां** = धनानां सम्पत् तासां (तत्पु०)। **श्रुतीनां** = वेदों के, '+श्रु + क्तिन् (ष० ब० व०)' श्रूयन्ते धर्मादियोऽभिस्तासाम्, श्रुतिः श्रोत्र, तथाम्नाये श्रुतीनां श्रोत्रकर्मणि' (विश्वकोष)। **उपयोगे** = उपयोग (उपदेशादि तथा भोगादि रूप उपयोग) करने पर—उप + √युज् + घञ् (स० ए० व०)। **अक्षयः** = अक्षय, न विद्यते क्षयः यस्य सः (नञ् तत्पु०), 'निधिः' का विशेषण। **गुरुः** = महान् तथा उपदेशक। **निधिः** कोष, निधीयते इति निधिः—नि + √धा + कि (प्र०, ए० व०)। **कृतः** = √कृ + क्त (प्र०, ए० व०), किया गया।

विशेष—**अलङ्कार**—प्रस्तुत श्लोक प्रजा, में सुपात्र, प्रजासृजा आदि श्लिष्ट पद हैं। इनका ब्रह्मा और पिता दोनों पक्षों में अर्थ किया जाता है; अतः इन पदों की अनेकार्थता के कारण यहाँ श्लेष अलंकार है। मल्लिनाथ ने भी 'शब्दमात्र के साधर्म्य से श्लेष माना है। वेदों की धनसम्पत्ति की समानता बताने के कारण उपमा अलङ्कार है। इन दोनों का अङ्गाङ्गिभाव संकर है।

२. नारद का दर्शन विशेष कल्याणप्रद इसलिए भी है; क्योंकि वे धर्माधर्म के महान् उपदेष्टा हैं। ज्ञान के अक्षय निधि हैं।

अवतरणिका—कृष्ण जी कहते हैं कि हे महर्षे। यद्यपि आपके दर्शन ही सेहम कृतकृत्य हो गये हैं तथापि आपके सारयुक्त वचनों को सुनना चाहता हूँ।

विलोकनेनैव तवामुना मुनेः कृतः कृतार्थोऽस्मि निबर्हितांऽहसा ।
तथापि शुश्रूषुरहं गरीयसीर्गिरोऽथवा श्रेयसि केन तृप्यते ॥२९॥

अन्वयः— मुने निबर्हितांऽहसा अमुना तव विलोकनेन एव कृतार्थः कृत अस्मि तथापि अहं गरीयसीः तव गिरः शुश्रूषुः अस्मि । अथवा श्रेयसि केन तृप्यते ॥२९॥

शब्दार्थ—हे मुने ! निबर्हितांऽहसा = पापों को नष्ट कर देने वाले, अमुना = इस, तव = आपके, विलोकनेन = दर्शन से, एव = ही, कृतार्थः = कृतकृत्य, कृतः =

कर दिया गया, अस्मि = हूँ, तथापि = तब पर भी, अहं = मैं (कृष्ण), गरीयसी = सारगर्भित, तव = तुम्हारे, गिरः = वचनों को, शुश्रूषुः = सुनने का इच्छुक (हूँ), अथवा, श्रेयसि = कल्याण के प्रति, केन = किसके द्वारा, तृप्यते = तृप्त हुआ जाता है।

हिन्दी अनुवाद—हे मुने ! (यद्यपि) पापों को नष्ट कर देने वाले आपके दर्शन से ही मैं कृतकृत्य कर दिया गया हूँ, तथापि मैं आपके सारगर्भित वचनों को सुनने का इच्छुक हूँ; क्योंकि (अपने) कल्याण के विषय में कौन (व्यक्ति) तृप्त हो जाता है अर्थात् कोई नहीं। (मनुष्य अधिक से अधिक अपने कल्याण के लिए सदा इच्छुक रहता ही है)।

संस्कृत-व्याख्या—मुने = महर्षे निबर्हितांऽहसा = निरस्तपापेन, अमुना = अनेन, तव = भवतः, विलोकनेन = दर्शनेन, एव = हि, कृतार्थः = कृतकृत्यः, कृतः = विहितः, अस्मि = भवामि, तथापि, अहम् = कृष्णः, गरीयसी = अर्थवत्तराः, तव = भवतः, गिरः = वाचः, शुश्रूषुः = श्रोतुमिच्छुः, (अस्मि)। अथवा = वा, श्रेयसि = कल्याणविषये, केन, तृप्यते = तृप्तो भूयते, न केनापीत्यर्थः।

सर्वङ्कषा—विलोकनेनेति। हे मुने निर्बर्हितांऽहसाऽपहृतापाप्मना अतएवामुना तव विलोकनेनैव कृतार्थः कृतोऽस्मि। तथाऽप्यहं गरीयसीरर्थवत्तराः। 'द्विवचन—' —(५/३/५७) इत्यादिना ईयसुन्प्रत्ययः। 'उगितश्च' (४/१/६) इति ङीप्। 'प्रिय-स्थिर—'(६/४/१५७) इत्यादिना गुरोर्गरादेशः। निरस्तव वाचोऽपि शुश्रूषुः श्रोतु-मिच्छुरस्मि। ऋणोतेः सन्नन्तादुप्रत्ययः। न चैतद्वृधेत्याह—अथवा। तथाहीत्यर्थः। अथवेति पक्षान्तरप्रसिद्ध्योरिति गणव्याख्यानात्। श्रेयसि विषये केन तृप्यते ? केना-पीत्यर्थः। कृतार्थताया इयत्ताऽभावादिति भावः। केन लिट्।

टिप्पणी— निबर्हितांऽहसा = पाप नष्ट कर देने वाले, निबर्हितम् अहो येन तेन (बहुव्रीहि), निबर्हित = नि + बर्ह + क्त, अंहस् = पाप। यह 'विलोकनेन' का विशेषण है। विलोकनेन = दर्शन से, 'वि + √लोक् + ल्युट् (अन) + (तृ०, ए० व०)'। कृतार्थः = कृतकृत्य, कृतः अर्थः यस्य सः (बहुव्रीहि)। कृतः = कर दिया गया, '√कृ + क्त + (प्र०, ए० व०)। गरीयसी = अर्थवती, अतिशयेनगुर्व्यः ग रीयस्यः ताः गरीयसीः, 'गुरु + ईयसुन् + ङीप् (गुरु को गरादेश, द्वि०, ब० व०)। 'गिरः का विशेषण है। गिरः = वाणी को, 'गीर्वाग्वाणी सरस्वती' (अमरकोष)। शुश्रूषुः = सुनने का इच्छुक, श्रोतुम् इच्छुः शुश्रूषुः—'√श्रू + सन् + उ' (प्र०, ए० व०)। श्रेयसि = कल्याण के विषय में, 'श्रेय श्रेयसं शिवं भद्रं कल्याणं मङ्गलं शुभम्' (अमरकोष)। तृप्यते = तृप्त हुआ जाया करता है, '√तृप् + लङ् (भाव में, प्र० पु०, ए० व०)।

विशेष—१. अलङ्कार—'श्रेयसि केन तृप्यते' में आक्षेपालंकार है; क्योंकि यहाँ आक्षेप से अर्थ निकलता है। 'श्रेयसि केन तृप्यते' इस सामान्य से 'गिरः शुश्रूषुः अस्मि' का समर्थन किया गया है, ऐसा मानने पर अर्थान्तरन्यास अलंकार ध्वनित होता है। उसे कारण मानने पर काव्यलिङ्ग ध्वनित हो सकता है।

अवतरणिका—सर्वप्रथम भगवान् कृष्ण नारद के आगमन का कारण पूछते हैं—

गतस्पृहोऽप्यागमनप्रयोजनं वदेति वक्तुं व्यवसीयते यया।
तनोति नस्तामुदितात्मगौरवो गुरुस्तवैवागम एष धृष्टताम् ॥३०॥

अन्वयः—गतस्पृहः अपि आगमन प्रयोजन वद इति वक्तुं यया व्यवसीयते तां न धृष्टताम् उदितात्मगौरवः गुरुः एषः तव आगमः तनोति ॥३०॥

शब्दार्थ—गतस्पृहः = तृष्णा रहित होते हुए भी, आगमनप्रयोजनं = आने का कारण, वद = बतायें, इति = ऐसा, वक्तुं = कहने के लिए, यथा = जिस (धृष्टता) से व्यवसीयते = प्रयास किया जा रहा है, उदितात्मगौरवः = मेरे आत्मगौरव को प्रदान करने वाला, गुरुः = महान्, एषः = यह, तव = तुम्हारा, आगमः = आगमन, एव = ही, नः = मेरी, धृष्टता को, तनोति = बढ़ा रहा है।

हिन्दी अनुवाद—**तृष्णा रहित होकर भी "(अपने) आगमन का प्रयोजन बताइये" (मेरे द्वारा) ऐसा धृष्टता के द्वारा कहा जा रहा है, उसका कारण आत्म-गौरव को बढ़ाने वाला आपका यह शुभकारी आगमन ही है, जो मेरी उस धृष्टता को बढ़ा रहा है।**

भावार्थ—भगवान् कृष्ण नारद से कहते हैं कि हे महर्षे ! आप गतस्पृह हैं, सांसारिक वासनाओं और तृष्णा से पूर्ण विरक्त हैं। तथापि मैं आप से यह पूंछने की धृष्टता कर रहा हूँ कि 'आप अपने आगमन का प्रयोजन बतायें'। ऐसा साहस मैं इसलिए कर पा रहा हूँ कि क्योंकि आपके शुभागमन से मेरा जो आत्मगौरव उदित हुआ है, वही मेरी धृष्टता को बढ़ाने का कारण है। अन्यथा मैं ऐसा साहस नहीं कर सकता था।

संस्कृत-व्याख्या—गतस्पृहः = विरक्तः, अपि, आगमनप्रयोजनं = आगमन-कारणम्, वद = कथम्, इति = एवम्, वक्तुं = प्रष्टुं, यथा = धृष्टता, व्यवसीयते = प्रेर्यते, उदितात्मगौरवः = संजातनिजगौरवः, गुरुः = महान्, एषः = अयम्, तव = भवतः, आगमः = आगमनम्, एव, नः = अस्माकम्, धृष्टतां = धृष्टत्वम्, तनोति = विस्तारयति।

सर्वङ्कषा—गतस्पृहोऽपीति ॥ गतस्पृहः विरक्तोऽपि त्वमागमनप्रयोजनं वदेति वक्तुं यया धृष्टतया व्यवसीयत उद्यम्यते। स्यतेर्भावे लट्। उदितमुत्पन्नमुक्तं वा आत्मनो मम गौरवं येन सः। गुरुः श्लाघ्यः एष त्वागमः आगमनमेव नोऽस्माकं तां धृष्टतां तनोति विस्तारयति। 'तनुं विस्तारे' लट्। भवतो निस्पृहत्वेऽपि प्रेक्षावत्प्रवृत्तेः प्रयोजनव्याप्त्या सावकाशः प्रश्नः इति भावः।

टिप्पणी—गतस्पृहः = विरक्त, गता स्पृहा यस्य सः (बहुव्रीहि), गत = समाप्त, √गम + क्त', स्पृहा = तृष्णा '√स्पृह + आङ् + टाप्'। यह नारद का विशेषण है। आगमनप्रयोजनम् = आगमन का प्रयोजन, आगमनस्य प्रयोजनम् (तत्पु०), आगमन